'आचारांग' और कबीर-दर्शन

• डॉ. निजामउद्दीन

'आचारांग' जैनागम का प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें आचार के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य (ब्रह्मचर्य) का विशद निरूपण किया गया है। आचार-दर्शन का मूलाधार समता है यानी सभी प्राणियों से एकात्मानुभव करना। सुख-दुःख, जीवन-मरण, मान अपमान में समत्व का अनुभव करना। कबीर निर्गुण भक्तिशाखा के ज्ञानमार्गी कवियों में सिरमौर हैं। उनके काव्य का पर्यवेक्षण करने पर विदित होता है कि उन्होंने आचार पर, जीवन-व्यवहार पर अधिक बल दिया है। उनके दार्शनिक सिद्धांतों को जब देखते हैं तो उनमें और आचारंग-प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा जीवन मूल्यों में अत्यधिक साम्य परिलक्षित होता है।

कबीर के दार्शनिक आध्यात्मिक विचारों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

१. परमतत्व
२. जीवतत्व
३. मायातत्व

परमतत्व के विषय में कबीर का दृष्टिकोण निराकार तथा साकार से परे है, वह न द्वैत और न अद्वैत, वह न निर्गुण है न सगुण। ब्रह्म का स्वरूप अनिर्वचनीय है। रहस्यवादी शैली में कबीर का अनिर्वचनीय ब्रह्म सबके लिए बोधगम्य नहीं, वह अगम है जीव उसी परमतत्व का अंश है, अतः अजर-अमर है। लेकिन परमात्मा या परमतत्व की स्थिति को 'आचारांग' के अनुसार अभिव्यंजित किया है। 'आचारांग' में परमात्मा का अभिनिरूपण अग्रांकित है -

१. सव्वे सरा णियट्टंति (१२३)

सब स्वर लौट आते हैं -परमात्मा शब्द के द्वारा प्रतिपाद्य नहीं है।

२. तक्का जत्थ ण विज्जइ (१२४)

वहाँ कोई तर्क नहीं है वह तर्क गम्य नहीं है।

३. मई तत्थ ण गाहिया (१२५)

वह मति द्वारा ग्राह्य नहीं है।

४. ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेयण्णे (१२६)

वह अकेला, शरीर रहित और ज्ञाता है।

५. से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, और न परिमण्डल है।

६. ण सुब्भिगंधे, ण दुरभिगंधे। (१२९)

वह न सुगंध है और न दुर्गन्ध है।

७. ण कक्कड़े, ण मउए, ण गरुए, ण लहुए ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण दुक्खे

वह न कर्कश है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है और न रूक्ष है।

८. अरूवी सत्ता (१३८)

वह अमूर्त्त अस्तित्व है।

९. से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण फासे, इच्चेतावं। (१६०)

वह न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है, न स्पर्श है, इतना ही है:

अब कबीर वाणी में इस परमात्मा का, परमतत्व का प्रतिबिम्ब निहारिए -

(१) कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै साकार।
वह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा॥
(२) अवगत की गति क्या कहूं जाकर गाँव न नावं।
गुन-बिहीन का पेखिये, काकर धरिये नाव॥
(३) ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सके तो जागि॥
(४) भारी कहूं तो वहु डरूं, हल्का कहूं तो झूंठ।
मैं का जानों राम कूं नैना कबहू न दीठ॥
(५) तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पहुपन में बास॥

जैनदर्शन में आत्मा और शरीर को भिन्न माना है, यहीं 'भेद -विज्ञान' है लेकिन आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता दर्शाई गई है यानी आत्मा अपने राग-द्वेष रहित, विकार रहित स्वरूप के कारण परमात्मा का अभिधान धारण कर लेती है। कबीर ने आत्मा परमात्मा की अभिन्नता बार-बार व्यक्त की है।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ कथौ ज्ञानी॥

माया का व्यवधान आने पर जीव परमात्मा से पृथक रहता है, जहाँ माया का आवरण हटा, वहां आत्मा अपने शुद्ध, ज्ञानमय रूप में व्यक्त हो जाती है। माया का दार्शनिक रूप जैनदर्शन में कर्म, काम, क्रोध, परिग्रह, लोभ, घृणा, राग-द्वेष आदि कहा जायेगा। "आचारांग" में कहा गया है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"कोहाइमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंतं।"

(शीतोष्णीय, १,४९)

अर्थात् वीर पुरुष कषाय के आदिभूत क्रोध और मान को नष्ट करे। लोभ को महान नरक के रूप में देखे। 'आचारांग' में अहिंसा तथा अपरिग्रह की चर्चा बार-बार की गई है, कबीर ने भी इनका बार-बार उल्लेख किया है कुछेक उदाहरण देखिए -

सव्वेसिं जीवियं पियं (लोक. ३, ६४)

सब प्राणियों को जीवन प्रिय है

मोहेण गब्भं मरणाति अति (लोक. १, ७)

मोह के कारण व्यक्ति जन्म-मरण को प्राप्त होता है।

हिंसा अनार्यवचन है और अहिंसा आर्य वचन है -

अणारियवयणमेयं। आरियवयणमेयं॥ (सम्यक्त्व २, २१-२४)

सब आत्माएं समान हैं -

समय लोगस्स जाणित्ता (३, १, ३)

मनुष्य परिग्रह से अपने आपको दूर रखे -

परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्केज्जा (२, ११७)

'आचारांग' (लोक. १०१, १०३) में स्पष्टतः कहा गया है कि जिसे तू हनन करने योग्य समझता है वह तू ही है, चूंकि अपना किया कर्म भोगना पड़ता है इसलिए किसी का वध न करना चाहिए। शुद्ध-अशुद्ध आहार के विषय में यहाँ निर्दिष्ट मत ध्यातव्य है।[१] अशुद्ध भोजन के परित्याग का दिया गया यह उपदेश आज के युग में बहुत आवश्यक है, मद्य मांस, मछली, अण्डा सभी का त्याग कर शुद्ध, सात्विक, शाकाहारी भोजन लेना चाहिए जो न पाप का भागी बनता है न रोग उत्पन्न करने वाला है। कबीर ने मांसाहार की निंदा की है -

उनको बिहिश्त कहां तें होहि,

सांझै मुरगी मारे।

कबीर ने अहंकार की, तृष्णा की, लोभवृत्ति की खूब निन्दा की है। अहंकारी मनुष्य को सुख कहां, परमात्मा की प्राप्ति कहां -

मैमंता मन मारि ने, नान्हा करि-करि पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीस॥

---

१. लोकविजय, १०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया के विषय में कबीर की उक्ति है -

माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि इवै परन्त
कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरन्त

अपरिग्रह एवं संतोषवृत्ति का इससे अच्छा और क्या दृष्टान्त होगा -

साईं इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए॥
गौधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान
जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

ये उद्धरण साम्यदृष्टि दर्शन के अभिप्राय से दिए गए हैं। यहाँ 'आचारांग' और 'कबीर-वाणी' में जीवन के व्यावहारिक रूप को बिम्बायित पायेंगे। दोनों कृतियों में जहाँ आध्यात्मिक तत्वों का विश्लेषण है, बहिर्मुखी चेतना के साथ ऊर्ध्वमुखी चेतना का प्राबल्य है, वहाँ समाज के परिष्कार-परिमार्जन के लिए सुधारवादी दृष्टिकोण का आधिक्य भी विद्यमान है। "आचारांग"[२] में कैसी सारगर्भित बात कही गई है -"जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है, जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है।" कबीर कहते हैं -

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

कबीर रचित रहस्यवादी भावना से आपूर्ण पद इसी श्रेणी में आते हैं।[३]

तीर्थंकरों ने समता को धर्म कहा है - "समियाए धम्मे"[४] (आचारांग)। सभी जीवों, प्राणियों को आत्मवत् जानकर, समता-धरातल पर उतर कर उनके साथ व्यवहार करना कल्याणप्रद है। विषमता, विसंगति कलह उत्पन्न करती है। कबीर इसीलिए कहते हैं, "हिन्दू तुरक की एक राह है सतगुरु यहि दिखलाई।" वह सबके साथ शीलभरा बर्ताव करने की प्रेरणा देते हैं मधुर वचन बोलने का उपदेश देते हैं क्योंकि मधुर वचन औषधि का काम करते हैं और कटु वचन तीर की भांति छेदने वाले होते हैं। अतः ऐसी वाणी बोलनी श्रेयस्कर है जो सब के तन-मन को शीतलता प्रदान करें -

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय। औरन को सीतल करे आपहुंसीतल होय॥

---

२. जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ। जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ। (१,१४७)

३. (क) दुल्हिन गाओ मंगलचार, हमारे घव आए रामराज भरतार
(ख) बाल्हा आव हमारे रे, तुम बिन दुखिया देह रे।

४. आचारांग-लोकसार ४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समत्व भाव राग-द्वेष विच्छिन्न करने वाला है। और राग द्वेष के विच्छिन्न होने पर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

'आचारांग' और कबीर-वाणी का विविध प्रसंगों परिस्थितियों आदि का अध्ययन-मनन करने पर यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि दोनों रचनाएं सामाजिक, लौकिक जीवनोन्मुखी और अध्यात्मोन्मुखी हैं। आचार तथा शीलतत्व का यहाँ सम्यक निरूपण हुआ है। यहाँ जीवन के नाना रूपों का कर्म, अहिंसा हिंसा, परिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि की विशदता से परिचर्चा की गई है। 'आचारांग' व्यक्ति का बाह्य तथा आन्तरिक परिष्कार करता है, कबीर के सिद्धान्त भी हमारे संस्कारों, मनोवृत्तियों का अभिमार्जन करते हैं। इन महत्वपूर्ण रचनाओं का गहन चिन्तन-मनन करना अनुसन्धानकर्ताओं के लिए आवश्यक है।

पो. बालैनी BALENI
मेरठ (Meerat) UP
पिन -२५०६२६

* * * * *

ज्ञान आत्मा का स्वभाव हैं । वह लिया अथवा दिया नहीं जाता। शिक्षक अथवा धर्मगुरू इसे सिर्फ जगाते हैं। यानी वह दिया लिया नहीं, वरण जगाया जाता हैं। अगर उसे जाग्रत न किया जाए तो वह आवृत, अनभिव्यक्त या दबा पड़ा रहता हैं।

• *युवाचार्य श्री मधुकर मुनि*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org